Shodhaytan - AISECT University Journal Vol I/Issue II December 2014 ISSN : 2349-4190

हिन्दी उपन्यासों में वैयक्तिक परिस्थितियाँ

डॉ. राम मनोहर उपाध्याय
आईसेक्ट विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

शोध सारांश

भारतेन्दु–युग में अनेक उपन्यासों की रचना हुई, जिनमें 'भाग्यवती', 'नूतन चरित्र' 'नूतन ब्रह्मचारी' एक अजान 'एक सुजान' 'निस्सहाय–हिन्दु' 'विधवा विपत्ति' 'जया कामिनी' आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ विजयशंकर मल्ल ने श्री फिल्लौरी जी के उपन्यास 'भाग्यवती' को हिन्दी का पहला उपन्यास घोषित किया है। लेखकों ने मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त बंगला के उपन्यासों के भी हिन्दी में अनुवाद किए। बाबू गदाधर ने 'बंग विजेता' और 'दुर्गेश–नन्दिनी', राधाकृष्णदास ने 'स्वर्णलता', प्रतापनारायण मिश्र ने 'राजसिंह', 'इंदिरा', 'राधारानी' आदि राधाचरण गोस्वामी ने 'जावित्री', 'मृण्मयी' आदि का अनुवाद किया। बाबू रामकृष्ण वर्मा और कार्तिकप्रसाद खत्री ने उर्दू और अंग्रेजी के बहुत से रोमांटिक और जासूसी उपन्यासों के अनुवाद प्रस्तुत किए। "वस्तुतः भारतेन्दु–युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता, चरित्र–चित्रण का अभाव, उपदेशात्मकता एवं शैली की अपरिपक्वता दृष्टिगोचर होती है।"– मानवीय जीवन पर, किसी राजनैतिक पृष्ठभूमि पर, करोड़पतियों की जिन्दगी पर, सड़कों पर बिजनेस और दिन में चना–मूँगफली बेचनेवालों की जिन्दगी पर, भिखारियों पर, स्पोर्ट्स के खिलाड़ियों और वैज्ञानिकों पर, आधुनिकता पर, अछूतों पर, मध्यवर्ग के अतिरिक्त समाज के अन्य अंगों से सम्बन्धित विषयों पर उपन्यासकारों ने अपनी कलम चलाई है। वस्तुतः हमारे उपन्यासों में हिन्दी साहित्य का विषय–क्षेत्र, यथार्थ एवं जीवन–दृष्टि विस्तृत होती जा रही है। हमारे साहित्यकार स्वस्थ दृष्टिकोण, व्यापक युग–बोध एवं संतुलित जीवन–दर्शन का उपयोग करते हुए, अभावों की पूर्ति का प्रयास कर रहे हैं। हिन्दी उपन्यासों में यथार्थ दृष्टि एवं जीवन सम्बन्धी विचारों की उपयुक्ता जीवन्त और यथार्थ बोध से युक्त है।

आधुनिक सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यासों का विशेष महत्व है। शुरूआती सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य के सभी अंगों के विकास की ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ध्यान दिया। हिन्दी उपन्यास–साहित्य पर उन्होंने लेखन कार्य किया। चन्द्रप्रभा 'नामक एक उपन्यास का अनुवाद किया तथा एक मौलिक उपन्यास की भी रचना आरम्भ की, पर यह उपन्यास पूरा नहीं हो सका। हिन्दी में सबसे पहला मौलिक उपन्यास 'परीक्षा–गुरु' भारतेन्दु के जीवन काल में ही–सन् 1882 में–प्रकाशित हुआ, इसका श्रेय लाला श्रीनिवासदास को है। इससे पता चलता है कि हिन्दी उपन्यासों की रचना बंगला उपन्यासों के आधार पर न होकर, सीधे अंग्रेजी के उपन्यासों की प्रेरणा से हुई। उपन्यास 'परीक्षा–गुरू' में दिल्ली के एक सेठ–पुत्र की कहानी है, जो कुसंगति में पड़ गया था, तथा जिसका उद्धार अन्त में एक सज्जन मित्र द्वारा हुआ। "उपदेशात्मक होने के कारण यह उपन्यास एक सफल उपन्यास मान्य नहीं हो सका।"–

हिन्दी के मौलिक उपन्यासों के प्रचार में वृद्धि करने का श्रेय देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी आदि को है। खत्रीजी ने सन् 1891 में 'चन्द्रकान्ता' और 'चंद्रकांता–संतति' की रचना की, जिनमें तिलस्म और ऐयारी का वर्णन है। ये उपन्यास इतने अधिक लोक–प्रिय हुए कि कई लोगों ने केवल इन्हें पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी। गहमरीजी ने एक 'जासूस' नामक पत्र निकाला जिसमें पॉच दर्जन से भी अधिक जासूसी उपन्यास स्वंय लिखकर प्रकाशित किए। उनके उपन्यासों का मूलाधार अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास होते थे। गोस्वामीजी के भी 'उपन्यासों का विषय सामाजिक था। किन्तु उनमें खत्री, गहमरी और गोस्वामी की सम्मिलित त्रिवेणी और प्रेमचंद के बीच की सीमा को मिलानेवाली श्री हरिऔध, लज्जाराम मेहता एवं कुछ अनुवादक हैं। हरिऔधजी ने 'ठाठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखकर विद्यार्थियों के लिए हिन्दी मुहावरों की पाठ्य–पुस्तक का अभाव पूरा किया, तो दूसरी ओर मेहताजी ने 'आदर्श हिन्दू' और 'हिन्दू गृहस्थ' लिखकर उपन्यासों में सुधारवाद की वृद्धि की।

प्रेमचन्द (1880–1936 ई.) के पदार्पण के पूर्व तक हिन्दी उपन्यास मानो किसी अविकसित कलि की भाँति मौन, निस्पन्द एवं चेतना–हीन से हो रहे थे, दिवाकर की प्रथम रश्मियों की भॉति प्रेमचन्द की साहित्य कला का पुनीत स्पर्श पाकर मानो वह जग उठा। राजा–रानियों और सेठ–सेठानियों के महलों की चार–दीवारी में बन्द रहनेवाला कथानक जनसाधारण की लोक–भूमि में उन्मुक्त रूप से विचरण करने लगा। लौह–मूर्तियों की भाँति स्थिर रहने वाले लेखकों के मौन–संकेतों पर अस्वाभाविक गति से दौड़ने वाले पात्र मांसल, सजीव और व्यक्तित्व–सम्पन्न होकर सामान्य मनुष्यों के रूप में आत्म–प्रेरणा से परिचालित होते दिखाई पड़ने लगे। इसी प्रकार कथोपकथन, देश–काल, शैली, उद्देश्य, रस आदि अन्य औपन्यासिक तत्वों का विकास प्रथम बार प्रेमचन्द की उपन्यास कृतियों में हुआ। उन्होंने सस्ते मनोरंजन के स्थान पर जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपनी कला का लक्ष्य बनाया। यही कारण है कि उनके सभी उपन्यासों में किसी–न–किसी सामयिक समस्या का चित्रण मार्मिक रूप में हुआ है ; जैसे–सेवा–सदन (1918) में वेश्याओं की रंगभूमि (1928) में शासक वर्ग के अत्याचारों की प्रेमाश्रय (1921) में किसानों की कर्मभूमि (1932) में हरिजनों की निर्मला (1922) में दहेज और वृद्ध–विवाह की गबन (1931) में मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता की और गोदान (1936) में पुनः किसान–मजदूर के शोषण की। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासों में आदर्शवादिता अधिक होने के कारण उनमें कहीं–कहीं काल्पनिकता और अस्वाभाविकता आ गई है, किन्तु आगे चलकर वे पूरे यथार्थवादी बन गए, जिसका प्रमाण गोदान में मिलता है। "जहाँ प्रारम्भिक रचनाओं में उन्होंने समस्याओं के समाधान का गांधीवादी ढंग से

प्रयत्न किया है, वहाँ उनके अन्तिम उपन्यासों–निर्मला, गोदान आदि में केवल समस्या को प्रस्तुत करके ही सन्तोष कर लिया गया है।''–

प्रेमचन्द के अनन्तर हिन्दी में शताधिक उच्चकोटि के उपन्यासकारों का प्रादुर्भाव हुआ है, जिन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न विषयों पर लेखनी उठाई। इनको हम अनेक वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। (प्रथम वर्ग में) वे लेखक आते हैं, जिन्होंने सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया। इस वर्ग में जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि उल्लेखनीय हैं। जयशंकर प्रसाद ने उपन्यास 'कंकाल' में भारतीय नारी–जीवन की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। उनके अन्य उपन्यास 'तितली' में नारी–हृदय की महानता का उद्घाटन हुआ है। कौशिक ने 'माँ' और 'भिखारिणी' में भी नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है। 'उग्र' लेखक के रूप में सचमुच उग्र हैं–उन्होंने 'दिल्ली का दलाल', 'बंधुआ की बेटी' आदि में सभ्य–समाज की भीतरी दुर्बलताओं, अनीतियों और प्रवृत्तियों का उद्घाटन आवेगपूर्ण शैली में किया है। चतुरसेन शास्त्री ने विधवाश्रमों की ओट में 'हृदय की प्यास' बूझाने वालों की खबर ली है। उपन्यास 'गोली' देशी रियासतों के शासकों की घृणित विलासिता को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। शास्त्री ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं। अश्क के उपन्यासों–मुख्यतः 'गिरती–दीवारों'–में मध्यवर्गीय समाज की बाह्य एवं आंतरिक परिस्थितियों का उद्घाटन यथार्थवादी शैली में है। विवाह सम्बन्धी सामाजिक रूढ़ियों के कारण होने वाली आधुनिक युवक–युवतियों के प्रणय की असफल परिणति पर उन्होंने 'चेतन' के माध्यम से प्रकाश डाला है। सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने वाले इन सभी उपन्यासों की शैली में प्रायः सरलता सामाजिक एवम् यथार्थ का आग्रह है।

दूसरे वर्ग में चरित्र–प्रधान उपन्यास–रचयिताओं को रखा जा सकता है। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा व सच्चिानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने विभिन्न मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषण–कर्ताओं के सिद्धान्तों के अनुकूल अपने औपन्यासिक पात्रों के चरित्र को सूक्ष्मतापूर्वक चित्रित किया है। चरित्र–चित्रण को इनमें इतनी अधिक [illegible] प्राप्त हुई है कि उसके समक्ष अन्य तत्व गौण [illegible] हैं। ऐसी स्थिति में इनमें सामाजिक परिस्थितियों के स्थान पर व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण को विस्तार मिलना स्वाभाविक था। जैनेन्द्र के उपन्यासों में 'सुनीता', 'परख', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', 'विवर्त्त' आदि उल्लेखनीय है। उनके अधिकांश उपन्यासों में पति–पत्नी एवं अन्य पुरूष के पारस्परिक सम्बन्धों का चित्रण किया गया जो प्रायः एक–सा ही रहा। इनकी नायिका प्रायः विवाहिता होती है, जो वैयक्तिक कुण्ठाओं के कारण अपने सम्पर्क में आने वाले किसी अन्य

प्रभावशाली व्यक्ति की ओर आकर्षित होती है। नायिका का पति इस स्थिति से परिचित होता हुआ भी, उसे चुपचाप सहन कर लेता है। ''प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि नायिका पति को छोड़कर नव–परिचित से सम्बन्ध स्थापित कर लेगी, किन्तु अन्त तक जाते–जाते जैनेन्द्र परिस्थिति को संभाल लेते हैं।''–3 कदाचित् यह निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि पत्नी को अन्य व्यक्तियों से मिलने–जुलने की जितनी अधिक स्वतंत्रता दी जाए, उतनी ही उसके चरित्र में दृढ़ता एवं सबलता आती है। वस्तुतः उनके उपन्यासों में शैली की सरलता के साथ–साथ भावात्मकता तथा बौद्धिकता अधिक प्रदर्शित हुई है।

इलाचन्द्र जोशी ने भी अपने 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'सुबह के भूले', 'मुक्ति–पथ' आदि में चारित्रिक प्रवृत्तियों एवं वैयक्तिक परिस्थितियों का ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है, किन्तु जैनेन्द्र की भाँति शुष्क कथानक उनके उपन्यासों में नहीं है। उनके पास प्रत्येक उपन्यास में प्रस्तुत करने के लिए नये–नये कथानक हैं, नयी–नयी समस्याएँ हैं, अतः उन्हें एक ही वस्तु को बार–बार दोहराने की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक ओर उनके पास कल्पना का वैभव है तो दूसरी ओर अनुभूतियों का संचित कोष–जिसके बल पर वे अपनी रचनाओं को सौन्दर्य और रस से भरपूर करने में समर्थ हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास यदि पेंसिल से बनाए हुए 'रफ स्केच' सदृश हैं, तो जोशी की रचनाएँ रंग–बिरंगी सूक्ष्म रेखाओं से सजे हुए सुन्दर चित्र हैं। जिस जटिल दार्शनिकता पर जैनेन्द्र गर्व कर सकते हैं, उससे जोशी के उपन्यास शून्य है, किन्तु जोशी की भावनाओं का तारल्य, भाषा का प्रवाह और शैली की प्रौढ़ता आज के किसी भी उपन्यासकार के लिए अनुकरणीय हैं। किन्तु अपनी कुछ रचनाओं में वे दार्शनिक–प्रिय आलोचकों से प्रशंसा पाने के निमित्त या उन्हें केवल विद्यार्थियों के काम की वस्तु बनाने के लोभ से उस शुष्क सिद्धान्त–निरूपण में भी पड़ गए हैं, जो उपन्यास की औपन्यासिकता का ह्रास कर देते हैं–'सुबह के भूले', 'मुक्ति–पथ' आदि रचनाएँ ऐसी ही है। भगवतीचरण वर्मा ने 'तीन वर्ष', 'आखिरी दांव', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भी मनोविश्लेषण को प्रमुखता दी है। दूसरी ओर अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' में यौन प्रवृत्तियों का चित्रण सूक्ष्म, जटिल एवं गंभीर शैली में किया है, जो सामान्य पाठक के हृदय को शक्ति प्रदान करने की अपेक्षा उसके मस्तिष्क को बदलने में सहायक होता है।

तृतीय वर्ग में साम्यवादी दृष्टिकोण से लिखे गये उपन्यासों को स्थान दिया जा सकता है। राहुल सांकृत्यायन की 'सिंह सेनापति', 'वोल्गा से गंगा' और यशपाल की 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' आदि रचनाओं में वर्ग–वैषम्य का चित्रण करते हुए सामाजिक क्रान्ति का समर्थन किया गया है। चतुर्थ वर्ग में देशकाल–प्रधान या ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। यद्यपि ऐतिहासिक कथानकों की ओर हिन्दी लेखकों का ध्यान बहुत पहले चला गया था, किशोरीलाल गोस्वामी ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे थे, किन्तु उनमें ऐतिहासिकता का निर्वाह नहीं मिलता। इस क्षेत्र की

उत्कृष्ट रचनाओं में आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगरवधू', 'हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'बाणभट्ट की आत्म–कथा' और 'चारूचंद्र', यशपाल की 'दिव्या' आदि हैं, जिनमें सम्बन्धित युग के सम्पूर्ण वातावरण को प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया गया है। "ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा को चरम–विकास तक पहुँचा देने का श्रेय वृन्दावनलाल वर्मा को है। आपने 'गढ़–कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झांसी की रानी लक्ष्मी बाई' और 'मृगनयनी' का प्रणय किया है, जिनमें इतिहास के अनेक विस्मृत प्रसंगों को नव–जीवन प्राप्त हुआ है।"4 विशेषतः 'मृगनयनी' में ऐतिहासिकता और औपन्यासिकता, तथ्य और कल्पना, भाव और शैली का सुन्दर समन्वय मिलता है। नवीनतम ऐतिहासिक उपन्यासों में डॉ. रांगेय राघव का 'अंधा रास्ता', 'सुनामी का भगवान', 'एकलिंग' आदि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त हिन्दी उपन्यासों का एक नया वर्ग 'आंचलिक' उपन्यासों की ओर भी विकसित हो रहा है। इनमें किसी अंचल या प्रदेश–विशेष के वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार के उपन्यासों में फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' उदयशंकर भट्ट का 'लोक परलोक', बलभद्र ठाकुर के 'आदित्यनाथ', 'मुक्तावती', नैपाल की दो बेटी', श्यामू सन्यासी का 'उत्थान', तरन–तारन का 'हिमालय के आँचल' आदि उल्लेखनीय है। इनमें लोक–संस्कृति, लोक–गीतों एवं लोक–शब्दावली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

इस प्रकार हिन्दी का उपन्यास साहित्य अनेक दृष्टि एवं अनेक धाराओं में बँटकर विभिन्न रंग–रूपों में विकसित हो रहा है। आधुनिक अनन्तर वर्षों में अनेक ऐसे उच्चकोटि के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ है, जिनमें नये–नये विषयों, शिल्प–विधियों और शैलियों का प्रयोग मिलता है। यज्ञदत्त के 'इन्सान' और 'अंतिम–चरण', 'अंचल का 'चढ़ती धूप', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ का पहिया', धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', राजेन्द्र यादव का 'प्रेत बोलते हैं' और 'टूटे हुए लोग' ; सत्यकेतु का 'मैंने होटल चलाया', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र', 'शतरंज' के मोहरे', लक्ष्मीनारायण लाल का 'बया का घोसला और साँप', आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'खग्रास', भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र', कृष्णचन्द्र शर्मा का 'नागफनी', रांगेय राघव का 'छोटी सी बात', 'राई और पर्वत', सत्यकाम विद्यालंकार का 'बड़ी मछली और छोटी मछली', यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र का 'अनावृत', अनन्तगोपाल शेवड़े का 'भग्न मंदिर', यशपाल का 'झूठा सच', देवराज का 'अजय की डायरी', जीवनप्रकाश जोशी का 'विवाह की मंजिलें', मोहन राकेश का 'अंधेरे बन्द कमरे'– आदि इस दशाब्दी के उत्कृष्ट उपन्यासों में से कुछ हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दी में और भी अनेक उपन्यासों के नाम उल्लेखनीय है–उदयशंकर भट्ट, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', बलवन्त सिंह, उषादेवी मित्रा, कंचनलता सब्बरवाल, गुरूदत्त, नागार्जुन, पहाड़ी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, डॉ. सत्यप्रकाश संगर, यादवेन्द्र नाथ शर्मा 'चन्द्र', हेमराज 'निर्मम' आदि उपन्यासों के अतिरिक्त हिन्दी में विदेशी एवं भारतीय भाषाओं के उच्चकोटि के उपन्यासों में सुन्दर अनुवाद भी भारी संख्या में प्रस्तुत हुए हैं। 5"इनमें हेमसन का 'आग जो बुझी नहीं', स्टीफैन ज्विग का 'बिराट', मोबी डिक का 'लहरों के बीच', ड्यूमा का 'कलाकार कैदी', बालजक का 'क्या वह पागल था' आदि प्रशंसनीय उपन्यास हैं। भारतीय लेखकों में से आरिगपूड़ि के 'अपने पराये', भवानी भट्टाचार्य का 'शेर का सवार', खांडेकर का 'ययति', विमल मित्र का 'साहब, बीबी, गुलाम, आदि महत्वपूर्ण हैं।"–

आधुनिक उपन्यास–साहित्य के संदर्भ में कह सकते हैं कि उसका क्षेत्र केवल सुशिक्षित समाज एवं शहरी जीवन तक सीमित हो गया है। कुछ उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की झलकियाँ भी दी गई हैं, किन्तु अधिकांश उपन्यासकारों ने फैशन के रूप में इसे ग्रहण किया है, ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थ बोध बहुत कम रचनाओं में उपलब्ध होता है। जैसे इलाचन्द्र जोशी, इकबाल देवसरे, ओंकार यादव, क्रान्ति त्रिवेदी, माया शबनम, धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. मधु धवन आदि। इस प्रसंग में यह चुनौती ध्यान देने योग्य है "हमारा आधुनिक साहित्य केवल 'मध्यमार्गीय साहित्य' इसलिए है क्योंकि हमारे अधिकांश साहित्यकार केवल इसी वर्ग की बातों को लेकर, केवल इसी वर्ग के लिए लिखते हैं।"6 थोड़ा विचार करने से ही यह बात भली–भाँति समझ में आ सकती है। आधुनिक उपन्यासों की प्रगति पर हम संतोष करते हैं, भविष्य की ओर देखने पर सुधार भाव भी महसूस होता है। (आधुनिक वर्ग में) स्वतंत्रता के बाद से हमारे साहित्यकार अतियथार्थवादिता, प्रयोगशीलता एवं नूतनता की प्रवृत्तियों से बुरी तरह ग्रसित होते जा रहे हैं। यह बात उपन्यास–साहित्य के रचयिताओं पर भी लागू होती है। हमारे विचार से अतियथार्थवाद रंगीन मिठाई की तरह से आकर्षक एवं लुभावने हैं। अवश्य ही इनमें जीवन का एक पक्ष है, किन्तु हमें अपनी दृष्टि उसी तक सीमित नहीं कर लेनी चाहिए। यदि हमारे साहित्यकार अपने युग और समाज की यथार्थ तस्वीर देने के साथ–साथ स्वस्थ जीवन–दृष्टि, संतुलित दृष्टिकोण एवं व्यापक जीवन–दर्शन भी दे सकें, तो इससे उनकी कला में सौन्दर्य के साथ–साथ औदात्य का भी संचार हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

{1} डॉ. प्रकाश चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृ. 229

{2} डॉ. दिनेश अग्रवाल : हिन्दी उपन्यासों का मूल्यांकन, पृ. 233

{3} डॉ. सुरेश चेतन : औपन्यासिक चरित्र–चित्रण, पृ. 98

{4} डॉ. रमेश नारायण : हिन्दी उपन्यासों की आलोचना, पृ. 214

{5} डॉ. सुषमा सिंह : हिन्दी के उपन्यासकार, पृ. 314

{6} डॉ. देवेश सक्सेना : आंचलिक उपन्यास, पृ. 79